ओ३म्

**‘विवाह का उद्देश्य एवं वैदिक जीवन की श्रेष्ठता’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

हमारा यह संसार वैदिक परम्परा के अनुसार 1,96,08,53,115 वर्ष पुराना है। इस संसार को बनाने वाले ईश्वर ने संसार को बनाकर सभी प्राणियों को बनाया और उसकी अन्तिम कृति थी ‘मनुष्य’। मनुष्य को बनाने के बाद इसके कर्तव्यों का ज्ञान कराना भी आवश्यक था। अतः ईश्वर ने इसकी पूर्ति के लिए मनुष्यों को स्वाभाविक ज्ञान के साथ अपनी समस्त विद्याओं का मनुष्योपयोगी आवश्यक ज्ञान प्रथम चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को प्रदान किया। ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वान्तरयामी होने के कारण जीवात्माओं के भीतर भी विद्यमान रहता है, अतः जीवों को ज्ञान कराने में उसे किसी प्रकार की असुविधा या कठिनाई नहीं है। यह कार्य उसके लिए सरल व सहज है। हम भी अपने शरीर के अन्दर रहते हैं। शरीर को कुछ भी क्रिया करानी हो तो हम अपने मन व बुद्धि की सहायता से उस अंग विशेष को प्रेरणा करते हैं और वह अंग इच्छित कार्य करने लगता है। हमें पुस्तक पढ़नी है, तो हम मन में यह विचार करते है, मन आत्मा का आशय ग्रहण कर लेता है, शरीर उठकर खड़ा हो जाता है, पुस्तक के पास जाकर उसे लेता है और पढ़ने के स्थान पर बैठकर पुस्तक का इच्छित विषय खोल कर पढ़ने लगता है। इसी प्रकार जब ईश्वर को ज्ञान देना होता है तो वह जीवात्मा को ज्ञान देने का संकल्प करता है और वेदों का ज्ञान, जो कि ईश्वर का नित्य स्वाभाविक ज्ञान है, चार ऋषियों के भीतर आ जाता है। इन चार ऋषियों से अध्ययन व अध्यापन की परम्परा का आरम्भ होता है। यही परम्परा अद्यावधि चली आ रही है।

**मनमोहन कुमार आर्य**

 ईश्वर ने इस सृष्टि को स्वयं व प्रकृति से भिन्न एक अन्य नित्य सत्ता जीवात्माओं के सुख के लिए बनाया है। जीवात्मा की संख्या मनुष्य के ज्ञान में अनन्त है। ईश्वर एक है और प्रकृति सत्, रज व तम स्वरूपा है जो कि प्रलयावस्था में सारे आकाश में विस्तृत वा फैली हुई होती है। सभी जीवात्मा परम धार्मिक स्वभाव के धनी ईश्वर की कृपा से अपने कर्मो वा प्रारब्ध के अनुरूप भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेकर अपने अस्तित्व को सफल करते हैं। जन्म का आधार पूर्व जन्म के शुभ-अशुभ कर्मों का कर्माशय या संचित कर्म होते हैं। इसी का नाम प्रारब्ध है। सभी जीवों के प्रारब्ध के अनुसार ईश्वर इन्हें जन्म देता है। जन्म लेकर जीव या तो पूर्व कर्मों के फलों को भोगते हैं तथा मनुष्य जन्म में नये कर्म भी साथ-साथ करते हैं। इस प्रकार से प्रारब्ध में से भोगने से पुराने कर्म घटते रहते हैं और नये कर्म उसमें जुड़ते रहते है। मृत्यु का समय आने और म्त्यु होने पर कर्मों की कुछ पूंजी बची रह जाती है। यही कर्माशय वा प्रारब्ध जीवात्मा के भावी जन्म जिसे पुनर्जन्म कहते हैं, का कारण व आधार होता है। अब जीवों को जन्म देने के लिए ईश्वर को इस मृत जीव के कर्मानुसार माता-पिता का चयन करना है। इसके लिए युवाओं व युवतियों में विवाह की कामना का होना आवश्यक है। युवाओं में यह कामना प्रकृति, जीवों के स्वभाव व परमात्मा प्रदत्त प्रेरणा आदि का परिणाम कहा जा सकता है। यदि युवाओं में विवाह की भावना या इच्छा नहीं होगी तो फिर यह संसार अवरुद्ध हो जायेगा। इसे जारी रखने के लिए विवाह का होना आवश्यक है।

 जिस प्रकार से हमारे व अन्यों के भी माता-पिता अपनी पूर्व जन्म में मृत्यु के बाद जीवात्म रूप में नये जन्म की इच्छा से आकाश में स्थित थे, तब उन सबके भावी माता-पिताओं, जो अपने समय के युवा थे, अपने स्वभाव व ईश्वर की इच्छा से विवाह के बन्धन में बन्धे थे और हमारे माता-पिता का जन्म सम्भव हुआ, इसी प्रकार से उन मृत जीवों का जन्म हो जाने पर यह युवा होकर अपने माता-पिता की भूमिका में आ जातें हंै और यह जन्म-मरण का चक्र चलता है जिसमें विवाह की अहम व प्रमुख भूमिका होती है। इस से यह सिद्ध होता है कि विवाह ईश्वर के सृष्टि को सतत चलाये रखने के लिए परमावश्यक है जिसमें जीवात्मा का स्वभाव, सुख व ईश्वर की इच्छा सम्मिलित है। अतः विवाह एक युवा स्त्री के अपने गुण, कर्म, स्वभाव, पसन्द के अनुरुप युवा पुरुष से वा दोनों के सुखों की प्राप्ति व उनके भोग के लिए सखा, मित्र, पति-पत्नी भाव को प्राप्त हो आजीवन प्रेम-सम्बद्ध होने के बन्धन को कहते हैं। विवाह का करना एक युवक व युवती का जीवन को सामान्य व सुख पूर्वक निर्वाह करने और साथ मिलकर समाज व देश हित के कार्यों को करने के लिए होता है। साथ हि इस संसार परस्पर मिल कर रहते हुए इसके उत्पत्तिकत्र्ता व नियन्ता ईश्वर को जानने व समझने तथा ईश्वर को ध्यान, चिन्तन व मनन द्वारा जानकर उसे प्रसन्न करने के लिए उसके गुण-कर्म-स्वभाव को जानकर उसके अनुरुप स्वयं को बनाकर सुख-समृद्धि व प्रजा की प्राप्ति और यथा समय सन्ध्या वा ध्यान आदि करते हुए बन्धनों को काटकर जन्म व मरण से मुक्त होने के लिए किया जाने वाला कर्म है।

 विवाह का उद्देश्य दम्पत्ति का साथ-साथ संयमपूर्वक रहकर वेद द्वारा निर्धारित अपने कर्तव्यों को जानकर उसका पालन करने का नाम है। शरीर को स्वस्थ रखने के युक्ताहारविहार आदि उपाय करने के साथ धनोपार्जन आदि करना तथा मितव्यवता व सरल साधारण जीवन व्यतीत करने के साथ सत्यार्थ प्रकाश आदि सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय व सच्चे महापुरूषों के उपदेशों को श्रवण करते हुए जीवन को व्यतीत करना है। सद्गृहस्थ के लिए करणीय पंच महायज्ञों का यथाशक्ति करना भी कर्तव्य वा धर्म है। यह हैं सन्ध्योपासना अर्थात् ईश्वर के स्वरूप, गुणों का ध्यान व उससे प्रार्थना आदि करना, यज्ञ-अग्निहोत्र जिसमें वायु शुद्धि सहित देवपूजा, संगतिकरण तथा दान करना होता है, तीसरा व चैथा यज्ञ पितृयज्ञ व अतिथियज्ञ है जिसमें माता-पिता-आचार्य व विद्वान अतिथियों की श्रद्धापूर्वक सेवा व सम्मान कर उन्हें सन्तुष्ट रखना होता है। सभी प्राणियों के प्रति दया की भावना तथा उनके रक्षण व पोषण में सहयोग करना ही प्राणि या बलिवैश्वदेवयज्ञ है। इन यज्ञों को करते हुए धर्मपूर्वक यथा समय पितृ ऋण आदि से उऋण होने के लिए योग्य सन्तानों को जन्म देना व पश्चात उनका पालन पोषण कर उन्हें आस्तिक, स्वस्थ व ज्ञान सम्पन्न कर समाज व देशहित के कार्यों के योग्य बनाना भी माता-पिता का कर्तव्य व दायित्व है। इस प्रकार कर्तव्यों का पालन करते हुए सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करना वैदिक धर्म सम्मत होता है।

 वैदिक धर्म में गृहस्थ जीवन की अवधि 25 वर्ष निर्धारित है। 50 वर्ष की अवस्था होने पर वानप्रस्थ तथा 75 वर्ष होने पर संन्यास का भी प्राविधान है। वैदिक जीवन पद्धति व अन्य पद्धतियों में मौलिक भेद यह है कि वैदिक पद्धति मनुष्य को जीवन मुक्ति अर्थात् जन्म-मरण के बन्धनों व दुःखों से मुक्ति की ओर ले जाती है जबकि अन्य पद्धतियां मनुष्य को सुख व दुखों का भोग कराकर परजन्म में सामान्य मनुष्य जीवन या निम्न जीवयोनियों में विचरण कराती हैं जहां अनुमान है कि सुख कम व दुःख अधिक हैं। अन्य जीवन पद्धतियों में ईश्वर व जीवात्मा का सत्य ज्ञान व उपासना पद्धति की उत्कर्षता व यथार्थता आदि गुण न होने के कारण वहां मनुष्य जीवनमुक्ति की सम्भावना तो दिखती ही नहीं। वहां उनके सिद्धान्तों के अनुसार कितना भी धर्म-कर्म कर लिया जाये, उसका परिणाम पुनर्जन्म ही सिद्ध होता है क्योंकि ईश्वर साक्षात्कार तो योग विधि से ध्यान करने व समाधि प्राप्ति पर ही होता है जो कि मुक्ति का आधार है। जीवन में मांसाहार, मदिरापान, सत्य ज्ञान की उपेक्षा व सीमित चिन्तन व सोच के कारण पक्षपात आदि करना जैसे कृत्यों से मनुष्य जीवन का भावी जन्म उन्नत होने की सम्भावनायें बहुत ही कम दृष्टिगोचर होती हैं जिसका कारण ईश्वर का न्यायकारी होना व किसी को किसी प्रकार की रियायत या छूट न देना आदि कर्मफल दाता ईश्वर का स्वरुप है। आश्चर्य एवं दुःख की बात है कि संसार के सभी लोग इस सत्य सिद्धान्त को भूले हुए हैं।

 अतः वैदिक विवाह मनुष्य को संयम पूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए धर्माचरण पूर्वक प्रजा वा सन्तान उत्पन्न करने के साथ यथार्थ उपासना विधि से ईश्वर को प्रसन्न करते हुए देश, समाज तथा सभी प्राणियों के प्रति दया व कल्याण की भावना को रखकर जीवन को भौतिक व आध्यात्मिक सुख के साथ मुक्ति की प्राप्ति भी कराता है। इसका विवेचन दर्शनकारों ने बहुत ही तर्क व युक्ति पूर्वके किया। सभी मनुष्यों को दर्शनों का अध्ययन अवश्य करना चाहिये जिससे सन्मार्ग दर्शन व कर्तव्य बोध हो सके। यह धारण करनी चाहिये कि ईश्वर एक है, उसके बनाये व रचे हुए सभी मनुष्य भी एक है व उसके पुत्र व पुत्रियों के समान हैं। जो इस भावना को लेकर जीवन व्यतीत करेगा वही ईश्वर की दृष्टि में सफल होगा। अतः वैदिक विवाह ज्ञान पूर्वक जीवन का निर्वाह कर इससे होने वाले लाभों को हस्तगत कराता है, सभी गृहस्थियों को इसका अभ्यास करना चाहिये।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**